कहानी

16

rk e Hkh i<xk

erh'k >k*

माता-पिता और शिक्षकों द्वारा बच्चों को मार-पिटाई और ज़ोर-ज़बरदस्ती के साथ पढ़ाना, उनके मन में पढ़ाई के प्रति खौफ़ पैदा कर उनके आत्मविश्वास को भी कम कर देता है। ऐसे में बच्चा डर के कारण माता-पिता और शिक्षक के सामने किताब खोलकर तो बैठ जाता है लेकिन पढ़ाई से दूर ही रहता है। इसलिए ज़रूरी है की बच्चों कि मानसिक स्थिति को समझकर बच्चे की पढ़ाई और खेल के बीच तालमेल बैठाना। बच्चों को दंड देने की अपेक्षा उन्हें प्यार और प्रोत्साहन देकर उनके मन में पढ़ाई के प्रति रुचि जाग्रत की जा सकती है। अभिभावक की सूझबूझ किस प्रकार एक बच्चे में पढ़ने के प्रति ललक जगा सकती है जानने के लिए पढ़िए कहानी - तो मैं भी पढ़ूँगा।

कहाँ से शुरू करूँ इस छोटी-सी जिंदगी की कहानी को शब्दों में समेटने की। उस ज़िद्दी, अक्खड़, शरारत-शैतानियों से भरे बचपन से, जहाँ सात-आठ साल का बच्चा मतीश जो बड़ा ही ढीठ और निडर होकर अपने माँ-बाबूजी द्वारा पढ़ने के लिए कहने पर कहता है कि मैं यदि पढ़ूँगा तो खेलूँगा कब? इसलिए मैं नहीं पढ़ूँगा। खेलना उसकी नियति है, वह खेलने में खाना-नहाना सब कुछ भूल जाता है। उसे भला खेलने से कौन रोक सकता है? उस वक्त पढ़ाई न करने के पीछे दो कारण प्रमुख रूप से सक्रिय रहे। एक तो खेल के प्रति अत्यधिक झुकाव और दूसरा पढ़ाई के दौरान पिटाई का खौफ़। इस पिटाई के खौफ़ ने अनगिनत बच्चों को निरक्षरता के अंधकार में भटकने के लिए मज़बूर किया और कमोबेश आज भी बच्चे इस दंड संहिता के चपेट में आकर पढ़ाई ही नहीं अपनी जान तक गँवा देते हैं।

इसलिए मैंने अपने अंतरंग मित्रों - बिमल और संतोष के साथ मिलकर अपने में एक अहम् और उसी अंधकार में ले जाने वाले फैसले को हरी झंडी दिखाते हुए कसमें खाईं कि घरवाले चाहे मारें..काटें..कुछ भी करें....पर हमें एक ही जवाब देना है कि मैं नहीं पढ़ूँगा। यदि पढ़ूँगा तो खेलूँगा कब? चाहे मारो.....काटो....मैं नहीं पढ़ूँगा। और यही वाक्य हम तीनों अपने-अपने घरों में बेखौफ़ एक लंबे समय तक दोहराते रहे और पढ़ाई करने से बचते रहे। इसका मतलब यह नहीं कि पढ़ने के लिए दबाव नहीं डाला गया बल्कि बहुत बार अच्छी-खासी धुनाई भी हुई, परंतु हम पढ़ते कैसे? हमने तो न पढ़ने की कसमें जो खाईं थीं।

* *कनिष्ठप्रोजक्टफ़ेलो*, सी.आई.ई.टी., राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग नयी दिल्ली-110016

कंचा खेलना, गिल्ली-डंडा खेलना, पतंगें उड़ाना, छुपम-छुपाई खेलना और यार-दोस्तों के साथ उनकी गायें चराना तथा कुत्ते लड़ाना (अपने कुत्तों को दूसरों के कुत्तों से) हमारी दिनचर्या का अभिन्न और दिलचस्प हिस्सा, या यूँ कहें कि आदत-सी बन गई थी। इस खेल में तीन और महानुभाव थे- बिजली, कालू और बसंती। यों तो ये तीनों कुत्ते-कुतिया थे, परंतु समझदारी और वफ़ादारी किसी इंसान से कम नहीं। जब जिसे जो आदेश किया जाता वे तीनों उसका पालन करते। हमारे गिल्ली-डंडा मैच के दर्शक-समर्थक ये तीनों धुरंधर गिलहरी, साँप, नेवला, सियार आदि के शिकार में सिद्धहस्त थे। एक बार तो कालू ने आम के बगीचे में एक बंदर को ही दबोचकर मार डाला।

एक बार की बात है, मेरे मामाजी मेरे घर आए। उनके कोट की जेब में एक बहुत ही कीमती और सुंदर कलम टँगी हुई थी। मैं अचानक घर में आया तो माँ ने कहा बेटे मामाजी को प्रणाम करो। मैंने प्रणाम किया और कुछ देर तक उनकी वेश-भूषा को निहारता रहा। एक जगह आकर मेरी आँखें अटक गई। उनकी चमकती सुनहरे रंग की कलम ने मुझे बाँध-सा दिया और मैं वहाँ से तब हटा जब माँ ने मुझे पुकारा-मंटू! इधर आ, मामाजी के लिए चाय ले जा। और मैंने माँ के पास आकर पूछा- माँ मामाजी की जेब में रखा वो क्या है? माँ ने कहा- मैंने ध्यान नहीं दिया, तू खुद चाय लेकर जा और देखकर मुझे बताना कि वो क्या है। माँ लौटकर आई और बोली- इसलिए कहती हूँ कि पढ़ो, तुम कलम तक को नहीं पहचानते.. तुम्हारा क्या होगा? और माँ उदास हो गई... आँखों में आँसू छलक आए। मुझे माँ का यह रूप बिल्कुल अच्छा नहीं लगा। पढ़ने के लिए कहा इसलिए नहीं, बल्कि इसलिए कि मैं पढ़ता क्यों नहीं हूँ? और मैंने माँ से पूछा कि इस कलम से क्या करते हैं? माँ बोली इससे भी लिखते हैं। मैंने कहा - दीदी, भाईजी सब तो पेंसिल और चॉक से लिखते हैं? माँ बोली जब पढ़-लिखकर बहुत बड़े आदमी हो जाते हैं तो ऐसी कलम से लिखते हैं। तुम्हारे मामाजी प्रवक्ता हैं। जो कॉलेज में, बड़े-बड़े लड़के-लड़कियों को पढ़ाते हैं। मैंने फिर सवाल किया कि यदि मैं भी पढ़ूँगा तो मुझे भी ऐसी कलम दोगी? माँ ने कहा कि तू पढ़ेगा तो इससे भी अच्छी कलम खरीद दूँगी। तो मैंने कहा- ठीक है...मैं भी पढ़ूँगा। एक क्षण के लिए मैं कलम के लालच में भूल ही गया कि मैंने न पढ़ने की कसमें खाई हैं। इतने में दोस्तों के सीटी बजाने की आवाज़ आई और मैं नौ-दो ग्यारह। शाम को मैं लौटा तो मामाजी जा चुके थे और मैं भी कलम को भूल चुका था। लेकिन माँ को शायद मेरी वो बातें याद थी कि मैं भी पढ़ूँगा। और पिताजी ने अगली रात दुकान पर से आने के बाद मुझे बुलाकर अकेले में कहा - मंटू एक बात कहूँ? और मैंने मन-ही-मन सोचा - कि पढ़ने के लिए कहेंगे और क्या? लेकिन मैंने कहा - कहिए। पिताजी बोले कि आपको तो पढ़ना है नहीं। आप पूरे दिन खेलते हैं? मैंने कहा - हाँ। उन्होंने कहा - खेलो पूरे दिन खेलो....अच्छी बात है, बस सिर्फ़ रात में मेरे साथ थोड़ी देर पढ़ना है और सो जाना है और फिर पूरे दिन

खेलते रहना। पढ़ाई के लिए आग्रह था और ज़ोर "पूरे दिन खेलते रहना" पर दिया ताकि मैं ना न कह सकूँ। और उनको अपनी इस योजना में सफलता मिली। मैंने सोचा कि खेलने के लिए तो मना नहीं कर रहे हैं, सिर्फ़ रात में तो थोड़ी देर पढ़ना पड़ेगा, पढ़ लेंगे और मैंने हाँ कर दी। अब मैं रोज़ रात को पढ़ने लगा और पढ़ना मुझे अच्छा भी लगने लगा क्योंकि यहाँ डाँट-डपट और पिटाई जैसी दंड-संहिता नहीं थी। अगर बच्चों को सही तरीके से पढ़ाया जाए तो पढ़ाई बोझ क्यों लगेगी? दरअसल खोट हमारी शिक्षण पद्धति में है जिसको दूर करना अत्यावश्यक है। कुछ दिनों बाद पिताजी ने फिर कहा- मंटू, पूरे दिन तो आप खेलते हैं? मैंने कहा - हाँ। उन्होंने कहा खेलो.....खूब खेलो, बस अब थोड़ी देर सुबह के समय भी मेरे साथ पढ़ लो और "पूरे दिन खेलते रहो" पर। और मैंने फिर हाँ कर दी, यह सोचते हुए कि खेलने को तो पूरा दिन मिल ही रहा है। अब सुबह-शाम पढ़ने का रूटीन बन गया। कोई दो महिने बाद उन्होंने फिर पूछा कि आप पूरे दिन खेलते हैं? मैंने कहा- हाँ खेलता हूँ। वे बोले - थोड़ी देर के लिए स्कूल चले जाओगे? वहाँ भी बहुत से बच्चे आते हैं, सब के साथ खेलना। और मेरी आँखों में स्कूल....बच्चे और तरह-तरह के खेल घूमने लगे और न जाने कब मैंने हामी भर दी।

अब मैं रोज़ स्कूल जाने के लिए समय से पूर्व ही तैयार हो जाता था, क्योंकि मस्ती करने की...खेलने की..शरारत करने की एक बेहतरीन जगह और ज़रिया जो मिल गया था। लड़ना-झगड़ना, स्कूल के पिछवाड़े बहने वाली रातो नदी में नंगे बदन नहाना अब आम हो गया था। शरारत अपने चरम पर तब पहुँची जब मैं टॉयलेट करने का बहाना लेकर कक्षा से बाहर निकला और चुपके से बड़ी ही सावधानी के साथ अध्यापिका के लंबे, घने और खुले बालों को पीछे खिड़की के डंडे से बाँधकर आ गया और कक्षा में सबसे पीछे जाकर बैठ गया। कुछ देर बाद जैसे ही अध्यापिका जाने के लिए उठीं तो सभी बच्चों ने ज़ोर से ठहाका लगाया। तब एक लड़की ने पीछे जाकर अध्यापिका के बाल खोले। अध्यापिका का गुस्सा सातवें आसमान पर था अध्यापिका ने पूछा - ये किसकी शरारत थी? सभी चुप। अध्यापिका ने डंडा घुमाते हुए पूछा कि- ये किसकी शरारत थी वर्ना पूरी कक्षा की पिटाई कर दूँगी। सभी बच्चों की हँसी गायब। पर यह किसकी शरारत है, किसी को क्या पता? अध्यापिका बोली - सभी खड़े हो जाओ और अपने-अपने हाथ सामने निकाल लो। मैं अब भी चुप था क्योंकि मुझे लग रहा था कि अध्यापिका सिर्फ़ डरा रही हैं ताकि कोई अपना जुर्म कबूल कर ले। पर मैं इस झांसे में कहाँ आने वाला था। लेकिन जब अध्यापिका ने पीटना शुरू कर दिया और दो-तीन छात्रों पर तड़ातड़ डंडे बरसाने लगीं तो मुझसे रहा नहीं गया और मैं अध्यापिका के सामने खड़ा हो गया। अध्यापिका ने गुस्से में कहा कि डाँट-पिटाई खाने की इतनी जल्दी हो रही है? जाओ अपनी सीट पर खड़े रहो। मैंने कहा - दीदीजी! अध्यापिका गुस्से में बोली- क्या है? मैंने डरते-डरते कहा-दीदीजी....दीदीजी... आपके बाल मैंने बाँधे....अध्यापिका ने हैरानी

से मुझे घूरते हुए पूछा- तुमने! मैंने हाँ में सिर हिलाया। अध्यापिका की निगाह में मैं शरीफ़ बच्चा था, यह छवि कब और कैसे बनी मुझे नहीं मालूम, पर बन गई थी। सो अध्यापिका को लगा कि मैं पूरी कक्षा को पिटने से बचाने के लिए कबूल कर रहा हूँ और उनका गुस्सा शांत होकर स्नेह में बदल गया। पिटाई से बच गया था, इसकी खुशी थी। पर जब पिताजी को ये बात बताई तो उन्होंने समझाया कि आप बेशक सच बता रहे थे, किंतु दीदीजी ने उसका अर्थ आपके अच्छे व्यवहार को देखकर अपने हिसाब से निकाला। इसलिए आप दीदी से दुबारा माफ़ी माँगेंगे और बताएँगे कि सचमुच आपने ही उनके बाल बाँधे थे।

इस तरह पिताजी के प्यार, आग्रह और समझदारी तथा कलम के प्रति आकर्षण की वजह से मैंने सुबह-शाम पढ़ना और फिर स्कूल जाना प्रारंभ कर दिया और "हमें तो पढ़ना नहीं है" की कसम कब कैसे तोड़ दी पता ही नहीं चला। और कसमें तोड़ने का यह सिलसिला एम.ए., बी.एड. मीडिया कोर्स आदि कर लेने के बाद भी बदस्तूर जारी है। आज दोनों दोस्तों के बारे में सोचता हूँ जिन्होंने उस कसम को बड़ी निष्ठा से निभाया है और अँगूठा टेक हैं तो अपने आप को दोषी पाता हूँ,. ....काश हमने वो कसमें न खाई होतीं। अब कुछ करने के नाम पर मैं अपने दोनों दोस्तों को केवल हस्ताक्षर करना ही सिखा पाया, जब मैं छुट्टियों में गाँव गया तो संयोग से वो दोनों भी गाँव आए थे।

पढ़ाई में पिटाई का खौफ़, नीरस, और बोझिल पाठ्यक्रम और शिक्षण पद्धतियों, गरीबी, अशिक्षा आदि ऐसे कारक हैं जो बच्चों की शिक्षा प्राप्ति में बाधक हैं। शिक्षा-संस्थानों, शिक्षा-शास्त्रियों और सरकार को इन कारकों पर गंभीरतापूर्वक विचार करना चाहिए। तभी सर्व शिक्षा यानी सभी के लिए शिक्षा का नारा बुलंद एवं प्रभावी हो सकेगा।

❑❑❑